तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास ३

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

नमिउण स्तव (चालु)

अेवं महाभयहरं, पासजिणिंदस्स संथवमुआरं;

भवियजणाणंदयरं, कल्लाण परंपर निहाणं.....१९

रायभयजक्खरक्खस, कुसुमिणदुस्सउणरिक्खपीडासु;

संजझासु दोसु पंथे, उवसग्गे तहय रयणीसु.....२०

जो पढई जो अ निसुणई, ताणं कईणो य माणतुंस्स;

पासो पावं पसमेउ सयलभुवणच्चियचलणो.....२१

-: शब्दार्थ :-

एवं - इस प्रकार से
महाभयहरं - महाभय को हरनेवाला
पासजिणिंदस्स - श्री पार्श्व जिनेश्वर का
संथवं - स्तवन
उआरं - उदार
भवियजण - भव्य जीव को
आणंदयरं - आनंद देने वाला
कल्लाण - कल्याण
परंपर - परंपरा का
निहाणं - कारण रुप है
रायभय - राजभय
जक्ख - यक्ष
रक्खस - राक्षस
कुसुमिण - कुस्वप्न
दुस्सउण - खराब शकुन
रिक्ख - दुष्ट ग्रह
पीडासु - पीडा में
संज्झासु - संध्या में
दोसु - दोनों
पंथे - मार्ग में
उवसग्गे - उपसर्ग में
तहय - तथा
रयणीसु - रात्रि में
पढई - पढना
जो - जो
निसुणई - सुनता है
ताणं - उन दोनो का
कइणो - इस स्तोत्र के कर्ता
माणतुंगस्स - मानतुंग नाम के आचार्य
पासो - श्री पार्श्वनाथ
पावं - पाप
पसमेउ - शमन करो / विनाश करो
सयल भुवण - तीन भुवन के जनों ने
अच्चिय चलणो - जिन के चरण पूजे हैं

गाथार्थ : इस प्रकार से महाभय को हरने वाला श्री पार्श्वनाथ प्रभु का उदार ऐसा यह स्तवन भव्य जीव को आनंद देने वाला तथा कल्याण की परंपरा का मूल कारण रुप है ।

राजभय, यक्ष, राक्षस, कुस्वप्न, खराब शकुन, दुष्ट ग्रह इन सभी की पीडा में दोनों संध्या (सुबह / शाम) मार्ग में उपसर्ग में, रात्रि में जो मनुष्य इस स्तवन को पढते हैं और सुनते हैं उन दोनों के तथा इस स्तवन के कर्ता श्री मानतुंग आचार्य के पाप का तीन भुवन के जनों ने जिनके चरण पूजे हैं ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान शमन करो, विनाश करो.....२०/२१

उवसग्गंते कमठासुरम्मिज्झाणाओ जो न संचलिओ;
सुरनर किंनर जुवइहिं, संथुओ जयउ पासजिणो....२२
अेअस्स मज्जयारे, अटूठारस अकखरेहिं जो मंतो;
जो जाणई सो ज्झायई, पासं, परमेसरं पयडं.....२३
तं नमह पासनाहं, धरणिंद णमसियं भयविणासं;
जस्स प्पभावेण सया, नासंति उवद्वा सव्वे.....२४
जं समरंताण मणे, न होई वाही न तं महादुक्खं;
नामंपि य मंतसमं, इय नाह थुणामि भत्तीअे.....२५

-: शब्दार्थ :-

उवसग्गंते - उपसर्ग करने वाला
कमठासुरम्मि - कमठासुर
ज्झाणाउ - ध्यान से
न संचलिओ - चलित नहीं हुए
सुरनर किन्नर - देव मनुष्य, किन्नर
जुवइहिं - स्त्रियों ने
संथुओ - स्तुति किये हुए
जयउ - जय पाओ
पासजिणो - श्री पार्श्व जिन
अेअस्स - इस स्तोत्र के
मज्झयारे - मध्य में
अट्ठारस - अठ्ठारह
अक्खरेहिं - अक्षरों से युक्त
मंतो - मंत्र
सो - वह
ज्झायई - ध्यान करता है
परमेश्वर - प्रभु
पयडं - प्रगट
नमह - नमस्कार करो
पासनाहं - पार्श्वनाथ को
धरणिंद - धरणेन्द्र के द्वारा
णंमंसियं - नमस्कार किये गये
भयविणासं - भय का नाश करने वाले
जस्स - जिनके
प्पभावेण - प्रभाव से
सया - हमेशा
नासंति - नाश पाते हैं
उवद्वा - उपद्रव
सव्वे - सर्व
जं - जो प्रभु को
समरंताणं - स्मरण करने वाले
मणे - मन में
न होई - होता नहीं
वाही - व्याधि
न - होता नहीं
महादुकखं - महा दुख
नामंपि - नाम भी
मंतसमं - मंत्र जैसा है
नाह - हे नाथ
थुणामि - स्तुति करता हूँ
भत्तीअे - भक्ति से

गाथार्थ :- कमठा सुर जैसे उपद्रव करने वाले फिर भी पार्श्वनाथ प्रभु ध्यान से चलित नहीं हुए । देव, मनुष्य तथा किन्नर की स्त्रियों के द्वारा स्तुति किये गये ऐसे श्री पार्श्वप्रभु जय पाओ.....२२

इस स्तोत्र के मध्य में अठारह अक्षर से युक्त जो मंत्र है, उसे जो मनुष्य जानता है वह श्री पार्श्वप्रभु का प्रगट ध्यान करता है २३

धरणेंद्र के द्वारा नमस्कार किये गये और भय का विनाश करने वाले उन पार्श्वनाथ प्रभु को तुम नमस्कार करो । उनके प्रभाव से सर्व उपद्रव नाश पाते हैं । श्री पार्श्वनाथ प्रभु का स्मरण जो मन में करते हैं उन्हें व्याधि तथा महादुःख नहीं होता । और जिनका नाम ''श्री पार्श्वनाथ'' भी मंत्र समान है, ऐसे हे नाथ मैं भक्ति से आपकी स्तुति करता हूँ.....२५

(भावार्थ :- इस स्तोत्र में श्री पार्श्वनाथ प्रभु के आश्चर्यकारी महात्म्य का विशिष्ट रीत से वर्णन कर गुणगान पूर्वक अत्यंत भक्तिपूर्वक स्तवना की गई है । उन्हें याद करने वाले के उपद्रव, विपत्तियां और दुःख नाश हो जाते हैं । नये नहीं होते । इन प्रभु का नाम भी मंत्र समान है, तथा इस स्तोत्र में महा प्रभावशाली अठारह अक्षर का मंत्र है । उसे जानने वाला प्रगट रुप से श्री पार्श्वनाथ प्रभु का ध्यान कर सकता है । यह बताया गया है ।)

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

(६) श्री वज्रस्वामी

तुंबवन गांव में धनगिरि और सुनंदा नामक पति-पत्नि रहते थे । पति धनगिरि ने दीक्षा ली तब पत्नी सुनंदा गर्भवती थी, उसने पुत्र को जन्म दिया पुत्र ने जन्म के बाद पिता की दीक्षा की बात तुरंत सुनी उससे पुत्र को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और दीक्षा लेने की तीव्र इच्छा हुई इसलीये माता का मोह उतर जाय इसके लिये पुत्र ने निरंतर रुदन शुरु किया । रुदन से परेशान माता ने भिक्षा हेतु पुत्र के पिता धनगिरि साधु आये तो उन्हें छः मास का पुत्र वोहरा दिया । धनगिरि ने बालक गुरु को सौंपा । गुरु ने उसमें बहुत भार होने से वज्र नाम रखा । उस बालक ने पारणे में रह सुन-सुनकर ग्यारह अंग कंठस्थ कर लिये ।

अब बालक को देख-देख कर माता का मन ललचाया और बालक को वापस लेने का प्रयत्न किया, राजसभा में झगडा गया और सभा में जिसके बुलाने पर बालक जिसके पास जाय उसका बालक, ऐसा चुकादा दिया गया । सभा भरी, माता को पहला अवसर दिया गया । इसलीये माता ने श्रेष्ठ मिठाइयां, सुंदर खिलौने वगैरह देना शुरु किया, पर वो तीन वर्ष का बालक उससे ललचाया नहीं फिर धनगिरि ने रजोहरण बताया तो वो लेने बालक दौड गया और ले लिया फिर थोडे समय बाद बालक ने दीक्षा ली इसलीये माता ने भी दीक्षा ली ।

वज्रस्वामी आठ वर्ष के हुए तब पूर्व भव के मित्र जृंभक देव ने शक्कर कोल्हापाक की भिक्षा देना चाही पर अनिमेष दृष्टि से देख, देवपिंड जान वज्रमुनि ने भिक्षा स्वीकारी नहीं, इससे प्रसन्न हुए देव ने उन्हें वैक्रिय लब्धि दी फिर एक बार देवो ने घेबर वोहराना चाहा, उसे भी देवपिंड जान नहीं लेने वाले वज्रमुनि को उन्होंने आकाशगामिनी विद्या दी । पाटलीपुत्र के धनश्रेष्ठी ने एक करोड की जायदाद के साथ कन्या देना चाही परंतु वज्रस्वामी मोह में नहीं पडे और कन्या को प्रतिबोध देकर दीक्षा दी । एक बार भयंकर दुष्काल पडने से श्रीसंघ को पटवस्त्र पर बैठाकर सुकालवाले प्रदेश में गये । वहां बौद्ध राजा ने जैन मंदिरो में फूलों को लाने की सख्त मनाई की । पर्यूषणपर्व के वक्त श्रावको ने वज्रस्वामी को इस बाबत में निवेदन किया जिससे आकाशगामिनी विद्या से वे माहेश्वरीपूरी में अपने मित्र माली को एवं हिमवंत पर्वत पर जाकर श्रीदेवी को बात बताकर बौद्ध राजा के राज्य में जिन मंदिरो के लिये पुष्प पूजा की व्यवस्था करायी और वहां दैविक महोत्सव से जैन शासन की प्रभावना कराई इससे आश्चर्यचकित होकर राजा ने भी जैन धर्म स्वीकारा और वो व्रतधारी श्रावक बना ।

एक समय कफ निवारण के लिये सूंठ का टुकडा कान पर चढा कर रखा था । वज्रस्वामी को वो प्रतिक्रमण करते वक्त कान पर से गिरने पर खाना भूल जाने की बात याद आयी । अपने प्रमाद के लिये दुःख हुआ और अल्प आयुष्य है ऐसा जाना फिर वज्रसेन नाम के अपने शिष्य से कहा कि, ''अब बारह वर्ष का अकाल पडने वाला है और जिस दिन लक्षमूल्य वाले चावल में से तुझे भिक्षा मिलने का प्रसंग आये उसके दूसरे ही दिन सुकाल होने वाला है, यह बात ध्यान में रखना ।'' इस तरह से कह अपने साथ रहे हुए साधुओ के साथ रथावर्त

पर्वत पर गये और वंहा अनशन कर स्वर्ग में गये । उस समय चौथा संघयण और दस पूर्व विच्छेद पाये । फिर बारह वर्ष का अकाल पडा । एक बार वज्रसेनमुनि सोपारक नगर में श्रावक के घर उसकी ईश्वरी नाम की स्त्री लक्षमूल्य वाले चांवल पकाकर उसमें जहर मिलाने का विचार कर रही थी तब वहां पहुंच गये और कुटुंब सहित मर जाने की क्रिया अटकायी, गुरुवचन कह सुनाये, इससे जहर मिलाने से वो अटक गयी । दूसरे दिन सुबह में ही जहाजो में खूब धान्य आ गया और सर्वत्र सुकाल हो गया । दूसरे भयानक दुष्काल के प्रारंभ में श्रीवज्रस्वामीने ८८ वर्ष की वय में पर्वत पर जाकर अनशनव्रत लिया । देह त्याग के बाद इन्द्र महाराजा ने वहां आकर प्रदक्षिणा की, इसलीये वो पर्वत ''रथावर्त'' कहलाया । वि.सं ११४ का वो वर्ष था ।

श्री दंडक प्रकरण - ३

श्री गजसार मुनि

उत्तर वैक्रिय शरीर का काल

अंतमुहुत्तं निरअे, मुहुत्त चत्तारि तिरिय मणुएसु ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणाकालो ।।१०।।

नारकी में अंतमुहूर्त, तिर्यंच और मनुष्य में चार मुहूर्त, देवताओं में आधा मास इस तरह उत्कृष्ट से उत्तर वैक्रिय का समय (काल) समझना ।

नारकी ने बनाया हुआ उत्तर वैक्रिय अंतमुहूर्त तक, तिर्यंच और मनुष्य ने बनाया हुआ उत्तर वैक्रिय शरीर चार मुहूर्त तक टिक सकता है । देवों ने बनाया हुआ उत्तर वैक्रिय शरीर (अथवा देवोंने विकुर्वित किया हुआ कोई भी पदार्थ) ज्यादासे ज्यादा पंद्रह दिन तक टिकता है, बाद में स्वंयमेव विलय-नाश हो जाता है । काल पूर्ण होने से पहले भी बुद्धि पूर्वक संहरण किया जा सकता है ।

वायुकाय में उत्तर वैक्रिय की रचना और विलय दोनो स्वंयमेव हो जाता है ।

(३) संघयण द्वार

थावर सुर नेरइआ, असंघयणा य विगल छेवट्ठा ।
संघयण छग्ग गब्भय, नर तिरिअेसुवि मुणेयव्वं ।।११।।

स्थावर, देवता और नारकी संघयण रहित है । विकलेन्द्रिय छेवटठुं (सेवार्त) संघयणवाले होते है, छः संघयण गर्भज मनुष्य और तिर्यंच के लिए भी समझना ।

	संघयण	
संख्या	दंडक	संघयण
१९	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय देव और नारक	संघयण नहीं होता
३	बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय (विकलेन्द्रिय)	छेवट्ठुं (सेवार्त संघयण)
२	गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य	छः संघयण

(४) संज्ञा और (५) संस्थान द्वार

सव्वेसिं चउ दह वा सन्ना, सव्वे सुराय चउरंसा ।
नर तिरिय छ संठाणा, हुंडा विगलिंदि नेरइआ ।।१२।।

सब को चार, दश संज्ञा होती है । सब देव समचतुरस्त्र संस्थान वाले होते है, गर्भज मनुष्य और तिर्यंच को छह संस्थान होते है । नारकी और विकलेन्द्रिय को हुंडक संस्थान होता है ।

संज्ञा चार अथवा दस प्रकार की होती है,

इन चार संज्ञाओमें आहार, भय, मैथुन और परिग्रहका समावेश होता है । दस संज्ञाओ में उपरोक्त चार संज्ञाओंके साथ ओघ संज्ञा-लोक संज्ञा एवं क्रोध, मान, माया, लोभ का समावेश होता है ।

चौबीस के चौबीस दंडक में चार और दस संज्ञा होती है । गति अपेक्षासे ऐसा कहा जाता है की तिर्यंचों को विशेषता से आहार और माया संज्ञा होती है..... मनुष्य में मैथुन और मान संज्ञा विशेष से होती है । नरक गति में भय और क्रोध संज्ञा विशेष से होती है.....एवं देवगति में परिग्रह एवं लोभ संज्ञा विशेष से होती है ।

शरीर का आकार वह संस्थान है । संस्थान छह प्रकार के होते है ।

देवों का समचतुरस्त्र संस्थान होता है, गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यंच को सभी छः के छः प्रकार के संस्थान होना संभव है । द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और नारकी को हुंडक संस्थान होता है । एकेन्द्रिय को हुंडक संस्थान ही होता है, पर उनका आकार अलग अलग होता है ।

संस्थान		
दंडख संख्या	**दंडक**	**संस्थान**
१३	**देव**	**समचतुरस्त्र**
१	**गर्भज मनुष्य**	**छह संस्थान**
१	**गर्भज तिर्यंच**	**छह संस्थान**
१	**नारक**	**हुंडक**
३	**विकलेन्द्रिय, द्वि ते चउरिन्द्रिय**	**हुंडक**
५	**स्थावर**	**हुंडक**

(५) संस्थान द्वार (चालु)

नाणाविह धय सूइ, बुब्बुय वण वाउ तेउ अपकाया ।
पुढवि मसुरचंदा, कारा संठाणओ भणिया ।।१३ ।।

अलग अलग प्रकार के ध्वजा, सुई एवं बुलबुले की तरह संस्थानवाले अनुक्रम से वनस्पतिकाय, वायुकाय, तेउकाय और अप्काय के होते है । पृथ्वीकाय मसूर की दाल के समान अथवा अर्धचंद्र के आकारवाले संस्थान के होते है ।

स्थावर सब एकेन्द्रिय का ऐसे तो संस्थान हुंडक है । बाह्य से चर्मचक्षु से हमें बादर एकेन्द्रिय के एक एक जीव का कोई आकार या आकृति दिखती नहीं है । परंतु केवलज्ञानरुपी चक्षु से ज्ञानी भगवंतो ने हमें उनका आकार बताया है, ये आकार जानने और समझने जैसे है -

स्थावर के आकार	
हुंडक संस्थान होने पर भी आकृति विविध होती है यह बताते है	
प्रत्येक वनस्पतिकाय	अलग अलग अनेक आकार के
वायुकाय	ध्वज के आकार के
अग्निकाय	सुई के आकार के
अपकाय	बुलबुले के आकार के
पृथ्वीकाय	मसूर की दाल अथवा अर्धचंद्र के आकार के

(६) कषाय और (७) लेश्या द्वार

सव्वेवि चउ कसाया, लेस छग्गं गब्भ तिरिय मणुअेसु ।
नारय तेउ वाउ, विगला वेमाणिय ति लेसा ।।१४।।

(चौबीस दंडक के) सब जीव चार कषाय वाले होते हैं । गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य को छह लेश्याअें होती है । नारकी, तेउकाय, वायुकाय, विकलेन्द्रिय और वैमानिक तीन लेश्यावाले होते हैं ।

कषाय है वहाँ संसार है और संसार है वहाँ कषाय है । अतः संसार के सब जीवों में चार कषाय होते है । इसी कारण अपना संसार अनादिकाल से चलता आ रहा है । यहाँ पर सभी जीव २४ दंडकों में फिर वह देव का हो या मानव का, तिर्यंच का हो अथवा नारकी का सभी जीव कषाय के दास है ।

लेश्या

लेश्या याने जीव का आत्मपरिणाम ।

किसी के आत्मपरिणाम शुभ होते है, किसी जीव के अशुभ होते है । एक ही जीव के आत्मपरिणाम भी कभी शुभ तो कभी अशुभ होते है । सब जीवों के आत्मपरिणाम सतत बदलते रहते है । आत्मपरिणाम यह भावलेश्या है । ये भावलेश्या उत्पन्न होने के जो कारणभूत पुद्गल है वे द्रव्यलेश्या है । द्रव्य लेश्या के पुद्गल विविध रंग के (वर्ण के) होते है । उसके अनुसार उनके नाम होते है और उनकी तीव्रता होती है ।

१) कृष्णलेश्या	-	काला वर्ण	-	अति क्रूर परिणाम
२) नीललेश्या	-	नील वर्ण	-	कम क्रूर परिणाम
३) कापोत लेश्या	-	भूरा (राखोडी) वर्ण	-	अल्प क्रूर परिणाम
४) तेजो लेश्या	-	लाल वर्ण	-	अल्प शांत परिणाम
५) पद्म लेश्या	-	पीला वर्ण	-	ज्यादा शांत परिणाम
६) शुक्ल लेश्या	-	सफेद वर्ण	-	अति शांत परिणाम

प्रथम तीन अशुभ लेश्या है ।
अंतिम तीन शुभ लेश्या है ।

गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य को उपर निर्दिष्ट छह की छह लेश्यायें संभवित है । नारकी, तेउकाय, वायुकाय, विकलेन्द्रिय और वैमानिक देवलोक के देवों को तीन लेश्यायें होती है ।

(७) लेश्या....(८) इन्द्रिय और (९) समुद्घात द्वार

जोइसिय तेउ लेसा, सेसा सव्वेवि, हुंति चउ लेसा ।
इंदिय दारं सुगमं, मणुआणं सत्त समुग्घाया ।।१५।।

ज्योतिषि को तेजोलेश्या होती है । बाकी के सर्व दंडक चार लेश्यावाले होते है । इंन्द्रियद्वार सुगम है । मनुष्यों को सात समुद्घात होते है ।

ज्योतिषचक्र के देवों को तेजोलेश्या होती है । शेष सभी दंडकों में चार लेश्या होती है ।

लेश्या		
दंडक संख्या	दंडक नाम	लेश्या
६	नारकी, तेउकाय, वायुकाय, द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय	कृष्ण-नील-कपोत
१४	असुरादि भवनपति (१०) व्यंतर (१) पृथ्वीकाय अपकाय और वनस्पतिकाय	कृष्ण-नील-कपोत-तेजोलेश्या
१	ज्योतिषी	तेजोलेश्या
१	वैमानिक	तेजो-पद्म-शुक्ल
१	गर्भज मनुष्य	छह लेश्या
१	गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय	छह लेश्या

इंद्रिय द्वार सुगम होने से विशेष बताया नहीं है। देवताओं के १३ दंडक, १ नारकी का एवं मनुष्य और गर्भज तिर्यंच ये कुल १६ दंडक पंचेन्द्रिय में आते है। पांच स्थावर दंडक एकेन्द्रिय में आते है। एवं द्विइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय का एक एक दंडक होता है।

इन्द्रिय		
दंडख संख्या	दंडक नाम	इंद्रिय
१६	नारकी, गर्भज मनुष्य, ग. तिर्यंच देवता	पांच इन्द्रिय
५	पृथ्वीकाय अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय	एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय
१	द्विन्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय-रसेनन्द्रिय
१	तेइन्द्रिय	स्पर्श-रस-घ्राण-इन्द्रिय
१	चउरिन्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय, रसेनन्द्रिय घ्राण एवं चक्षुरिन्द्रिय

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

चतुर्थ गुणस्थान में रहा हुआ जीव क्या करता है ?

चौथे गुणस्थान में विरति का उदय न होने से जीव व्रत-नियम-पच्चक्खाण नहीं करता पर उसके सिवाय भी कई करने योग्य कृत्य है, जिनका परिचय कराते हुए कहते है -

देवे गुरौच संघेच सदभक्तिं शासनोन्नतिम् ।
अव्रतो पि करोत्येव स्थित स्तुर्ये गुणालये ।।२३।।

चौथे गुणस्थान में रहा हुआ अव्रती जीव भी देवगुरु-संघ की सुंदर भक्ति और शासन की उन्नति करता है ।

अरिहंत परमात्मा की अपूर्वभक्ति उसके अंतर में बसी हुई रहती है । परमात्मा के जिनालय बनाना, जिन प्रतिमा बनवाना, प्रतिष्ठा करना, समर्पित करना (पधराना) उनकी पूजा अर्चना करना और अमूल्य कर्मक्षय कर पुण्योपार्जन करना । रावण राजा ने जिन भक्ति से तीर्थंकर नाम उपार्जन किया है । पाँच कोंडी के अठ्ठारह पुष्पों से जिनपूजा कर कुमारपाल राजा हुए ।

अहिंसा प्रतिपालक बने, आगे गणधर बनकर मुक्तिपद के भोगी बनेंगे ।

सम्यग्यदृष्टि जीव के हृदय में जिनभक्ति के साथ साथ गुरुभक्ति भी बसी हुई रहती है । गुरु का परम विनय, सेवा, वैयावच्च भक्ति उसके रगरग में व्याप्त रहती है । आहार,पानी, वस्त्र, पात्र, स्थान आदि द्वारा वह गुरुभक्ति का लाभ लेता रहता है ।

साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप, चतुर्विध संघ सम्यग्दृष्टि की नजर में पच्चीसवे तीर्थंकर स्वरुप होते हैं । इस चतुर्विध संघ के भक्ति में वह अपना परम सौभाग्य समझता है । मौका मिला तो गँवाये बिना वह लाभ लूटता रहता है ।

शासन की उन्नति और जयजयकार के लिए वह रथयात्रा, संघपूजा, तीर्थयात्रा, महोत्सव आदि अनुष्ठान करता रहता है । मुझे जो जयवंता शासन मिला वह विश्व के सब जीवों को मिले इसलिये वह सतत प्रयत्नशील रहता है ।

आईये ! ऐसे अनोखे अनुष्ठानों को अपने हृदय में अद्‌भूत स्थान प्रदान करें । ऐसे अनुष्ठानों द्वारा तन,मन, वचन को आराधना में जोडकर ही रहें । जिन शासन की अपूर्व प्रभावना कर अनेकों के अंतर में जिन शासन की स्थापना करें ।

चौथे गुणस्थान में ७७ प्रकृति बंध में होती है, १०४ प्रकृति उदय और उदीरणा में होती है, जब की उपशम सम्यकत्व की अपेक्षा से १४८ प्रकृतियाँ सत्ता में होती है ।

(५) देशविरति गुणस्थान

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद जीव व्रत,नियम लेकर आराधना कर जीवन को शक्य उतने पापों से दूर रखने का प्रयत्न करता है । तब वह पाँचवे श्रावक योग्य देशविरति गुणस्थान प्राप्त करता है ।

प्रत्याख्यानो दया द्देश विरति र्यत्र जायते ।
तच्छ्राद्धत्वं हि देशोन पूर्व कोटि गुरुस्थि तिः ।।२४।।

तत्व के ज्ञान से वैराग्यवासित हुए सम्यकदृष्टि जीव की इच्छा तो सर्व विरति ग्रहण करने की ही होती है । परंतु सर्वविरती का घात करनेवाले प्रत्याख्याना वरणीय कषाय के उदय से सर्वविरति ग्रहण करने का सत्व उत्पन्न नहीं होता । सत्व प्रगट नहीं होता । ऐसा जीव जघन्य मध्यम अथवा उत्कृष्ट देशविरति धर्म को प्राप्त करता है । अतः इस गुणस्थान का नाम देशविरति गुणस्थान है ।

जघन्य देशविरतिवाला जीव मांस-मदिरा युक्त सात व्यसनों का त्यागी होता है । प्राणातिपात विरमणव्रत को धारण करनेवाला एवं नमस्कार महामंत्र का आराधक होता है ।

मध्यम देशविरतिधर श्रावक के बारह व्रतों का पालन करनेवाला एवं श्रावक के छह कर्तव्य की आराधना करनेवाला होता है । (जिनेंद्र पूजा, गुरुभक्ति, अनुकंपा, सुपात्रदान, गुणानुराग एवं आगमरुचि)

उत्कृष्ट देशविरतिधर सचित्ताहार का त्यागी होता है । नित्य एकासना करनेवाला एवं संपूर्ण ब्रम्हचर्यव्रत का आराधक होता है । सर्वविरति की इच्छा रखनेवाला और सब आरंभ-समारंभयुक्त कार्यों का त्यागी होता है ।

इस गुणस्थानक की स्थिति देशोन पूर्व करोड वर्ष की होती है ।

देशविरति गुणस्थान में कैसा ध्यान संभवित है ?

ध्यान यह एकाग्रता है । जीवन के विविध प्रसंगो में जहाँ रुचि होती है वहाँ एकाग्रता संभवित है देशविरति गुणस्थान में कैसे कैसे ध्यान की संभावना होती है यह बताते है -

आर्त्त रौद्रं भवेदत्र मंदं धर्म्यं तु मध्यमम् ।
षट् कर्म प्रतिमा श्राद्ध व्रतपालन संभवम् ।।२५।।

इस गुणस्थानक में आर्त और रौद्रध्यान की मंदता होती है । मध्यम ऐसा धर्मध्यान होता है । यह धर्मध्यान छह आवश्यकों के सेवन से एवं श्रावक के बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमाओं के पालन से होता है ।

रौद्रध्यान के चार प्रकार बताते है -

१) हिंसानंद रौद्रध्यान २) मृषावादानंद रौद्रध्यान ३) चौर्यानंद रौद्रध्यान एवं ४) संरक्षणानंद रौद्रध्यान ।

रौद्रध्यानी जीव को हिंसा, असत्य, चोरी आदि में आनंद होता है । खुद का स्वार्थ साधने के लिए एवं सत्ता,संपत्ति के रक्षण के लिए वह हिंसा का आचरण भी करता है, असत्य का प्रयोग भी करता है और चोरी कर दुसरे का माल पचा डालता है, इतना ही नहीं ऐसी प्रवृत्ति करने में खुशी अनुभव करता है । परंतु तत्व और धर्म को जानने के बाद देशविरति गुणस्थान में यह प्रवृत्ति मंद बन जाती है । अब ऐसी प्रवृति में कोई आनंद नहीं आता, रस भी अनुभव नहीं होता, कभी कभी अनादि के अभ्यास के कारण क्षणिक ऐसी कोई प्रवृति संभवित है ।

संपूर्ण लोक जब आर्तध्यान में डूबा हुआ है, तब देश विरतिधर को भी मंद परिणामी आर्तध्यान हो सकता है, ऐसे आर्तध्यान के भी चार प्रकार है १) अनिष्ट वस्तु संयोग आर्तध्यान २) इष्ट वस्तु वियोग आर्तध्यान ३) रोगचिन्ता आर्तध्यान और ४) शोक चिन्ता आर्तध्यान ।

देशविरतिधर जैसे जैसे आराधना में आगे बढते जाता है, वैसे वैसे उपरनिर्दिष्ट रौद्र और आर्तध्यान मंद परिणामी बनता है । जीवन में धर्मध्यान की वृद्धि होने लगती है । यह धर्मध्यान भी चार प्रकार का है जो आगे बतायेंगे ।

१) सामायिक २) चउविसत्थो ३) वंदन ४) प्रतिक्रमण ५) कायोत्सर्ग ६) पच्चख्खाण प्रमुख छह आवश्यक, प्राणातिपात आदि १२ व्रत और ग्यारह प्रतिमादि के आलंबन से जीव धर्मध्यान में आगे बढता है । धीरे धीरे उसमें स्थिरता आती है ।

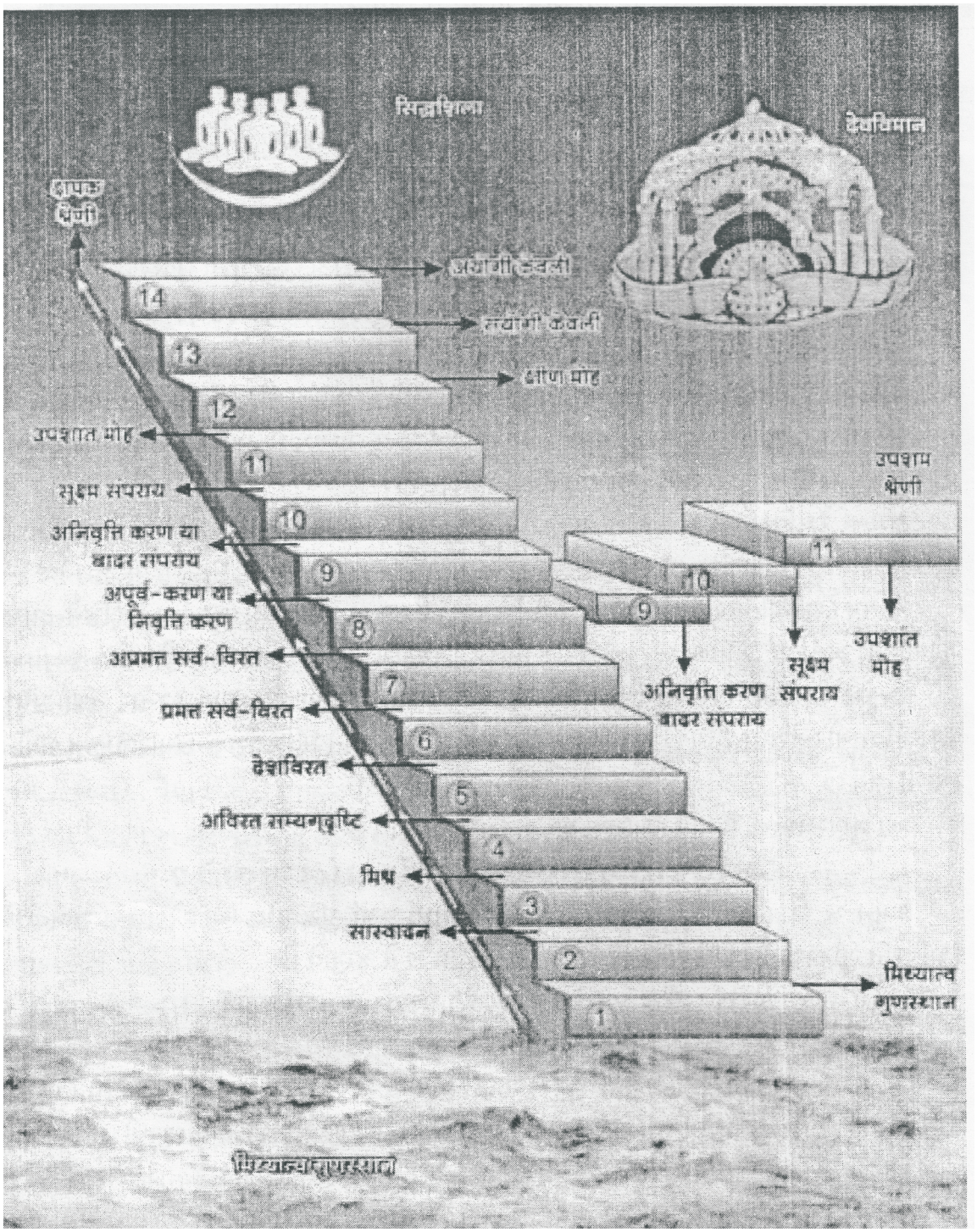
सिद्धशिला
देवविमान
क्षपक श्रेणी
अयोगी केवली
सयोगी केवली
क्षीण मोह
उपशांत मोह
सूक्ष्म संपराय
अनिवृत्ति करण या बादर संपराय
अपूर्व-करण या निवृत्ति करण
अप्रमत्त सर्व-विरत
प्रमत्त सर्व-विरत
देशविरत
अविरत सम्यग्दृष्टि
मिश्र
सास्वादन
मिथ्यात्व गुणस्थान
उपशम श्रेणी
14
13
12
11
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1

इस गुणस्थानक में सडसठ (६७) प्रकृतिका बंध होता है । सत्यासी (८७) प्रकृतियों का उदय और उदीरणा होती है, जबकी १४८ प्रकृति सत्तामें होती है ।

(६) प्रमत्त संयत गुणस्थान

देशविरतिधर जब सर्वविरति का स्वीकार करते हैं तब वे पाँचवे गुणस्थानक से छठवें गुणस्थानक पर आते हैं । यहाँ सर्व विरति है, परंतु साथ में पाँच प्रकार के प्रमाद भी है इसीलिये यह प्रमत्त गुणस्थान है ।

कषायाणां चतुर्थानां व्रती तीर्वोदये सति ।
भवेत्प्रमाद युक्तत्वात् प्रमत्तस्थान गोमुनिः ।।२७।।

संज्वलन कषाय के तीव्र उदय में जीव प्रमाद युक्त होता है । ये प्रमाद पाँच प्रकार के हैं - १) जाति आदि आठ प्रकार के मद २) पाँच इन्द्रियों के २३ विषय ३) कषाय ४) पाँच प्रकार की निद्रा ५) चार प्रकार की विकथा । इन पाँच प्रकार के प्रमाद सहित का जो साधु जीवन वह **प्रमत्त संयत गुणस्थान** है ।

अतंर्मुहूर्त से अधिक प्रमाद में रहे तो पाँचवे देशविरति गुणस्थान में जाये और यदि अंतर्मुहूर्त से अधिक अप्रमाद में रहे तो सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थान में जाये । इस गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अंतुर्मुहूर्त की है ।

अस्तित्वान्नो कषायाणामत्रार्त्त स्यैंव मुख्यता ।
आज्ञा द्यालम्बनो पेता धर्मध्यानस्य गौणता ।।२८।।

इस प्रमत्त संयत गुणस्थान में आर्तध्यान की मुख्यता हैं, परंतु उपलक्षण से रौद्रध्यान भी है । आर्तध्यान की मुख्यता किसलिये है ? तो उसे बताते हुए कहते हैं, कि हास्यादिक षट्क है इसलिये आर्तध्यान है । आज्ञा के आलंबन से धर्मध्यान की गौणता है । धर्मध्यान के चार भेद हैं - १) अन्य मतावलंबियों से बाधित हुए बगैर सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञा का स्वीकार करके तत्व का विचार करना उसे **आज्ञा विचय** धर्मध्यान कहते हैं । २) राग और द्वेष से जीव को जो कष्ट होता है, राग-द्वेष को कटु परिणाम का चिंतन उसकी विचारणा करना वह **अपाय विचय** धर्मध्यान है । ३) क्षण क्षण जीव को विविध प्रकार के कर्म उदय में आते हैं । घडीक में ाता घडीक में अशाता, क्षण में ज्ञानावरणीय का उदय तो दूसरे पल अंतराय कर्म का उयद कर्म विपाक का चिंतन करना वह **विपाक विचय** धर्मध्यान है । ४) यह संसार अनादि काल से है उत्पति-विनाश-ध्रौव्य भी है । उर्ध्वलोक-अधोलोक-तिर्च्छालोक स्वरुप चौदह राजलोक के स्वरुप का चिंतन करना वह संस्थान विचय धर्मध्यान है । ऐसा जो धर्मध्यान है उसकी यहाँ गौणता है, कारण कि यहाँ प्रमाद की हाजरी (उपस्थिति) है ।

श्री गौतमस्वामी प्रभु महावीर स्वामी को पूछते हैं, ''हे वीतरागी ! इस गुणस्थानक में कौनसे गुण प्राप्त होते हैं ?''

अनंत उपकारी प्रभु महावीरस्वामी ने कहा, '' हे गौतम ! इस गुणस्थान में रहा हुआ जीव नवतत्व को जानता है, नवकारसी से लेकर वरसीतप तक के तप को जानता है, सद्हणा करता है, प्रेरित करता है और शक्ति के अनुसार करता है । इस गुणस्थानक में रहा हुआ जीव एक पच्चक्खाण से लेकर श्रावक के १२ व्रत और ११ प्रतिमा तक शुरु करता है और संलेखना तक अनशन की आराधना करता है । वह जीव अल्प इच्छावाला, अल्पआरंभी, सुशील, सुव्रती, धर्मिष्ठ, संवेगवन्त, दृढ सम्यक्त्वी, उत्तम क्रियानुगामी, जैन धर्म प्रभावक आदि गुणों से संपन्न होता है । देशविरति वाला होता है, परिणामों की धारा सें साधु जैसा जानना, जिससे जघन्य से तीसरे भव में, उत्कृष्ट से सातवे आठवे भव में मोक्ष प्राप्त करते है ।

गोचरी

धर्मलाभ !

अचानक धर्मलाभ का आवाज सुन घर में मिश्र स्नेह भावना की लहर दौड गयी.... बडी माँ को आनंद हुआ बेटा पास हुआ है.... डॉक्टर बना इस खुशी में मित्र खाना खाने आने वाले थे... रसोई लगभग तैयार थी.... अनायास लाभ मिल गया.... दरवाजा खोलकर पधारो.... पधारो.... कहकर उन्होंने मुनिराज को अंदर पधारने की विनंती की....मुनिराज पधारे.... पाटला रखने में आया.... मुनिराज ने तरपणी रखी.... घर के सारे एकत्रीत हुए.... चलो हम सब वोहराकर लाभ लेगे.... एक-एक वस्तु व्यंजन लेकर वोहराने को आगे बढे.....

साहेब ! दूधपाक....

इसमें बादाम, पिस्ते डाले हुए है न ? अभी मेवा नहीं चलता है...

साहेब ! ढोकले....

कब भिगोया था ? .... छाछ गरम की हुई है....

नहीं.....! छाछ गरम नहीं की है..... रात को भिगोया था.....

तो यह नहीं कल्पेगें.....

साहेब ! पुलाव-कढी.....

इसमें भी काजू... व कोथमीर (धनिया) है.... यह भी काम नहीं आयेगा....

सब्जी आलू की थी इसलिये वो तो लेने की ही नहीं थी ।

घर में सब उलझन में पड गये..... अब क्या करना ?

तब मुनिराज ने स्वयं कहा ''चुटकी भर शक्कर ले लो वह चलेगी ।''

बहन ने शक्कर वोहरायी.... मुनिराज धर्मलाभ देकर शांति से चले गये....

पर घर में सबके मन में दुःख हुआ.... अपने घर मुनिराज के पगले हुए (चरण पडे) पर हम लाभ नहीं ले पाये.... थोडा सा उपयोग (ख्याल) रखा होता तो जरुर लाभ मिल जाता.... पर अब पश्चाताप करने से क्या होगा ?

ऐसे प्रसंग हमारे घर भी कभी - कभी बनते है । सब तैयार होने बावजूद साधु-साध्वीजी भगवंतो को कल्पे (काम आये) ऐसी एक भी वस्तु नहीं होती....

इन सब के पीछे का मुख्य कारण हमारी एक भ्रामक कल्पना है । हम मानते है की भक्ष्य... अभक्ष्य... कल्प्य.....अकल्प्य..... ये सारे विचार साधु-साध्वीजी भगवंतो के लिये है । नहीं ! यह हमारी भूल

है.... जो साधु-साध्वीजी भगवंतो को न कल्पे, नहीं चले, वो श्रावक को कभी भी नहीं ही चलता है..... हम साधु को चले न चले उसका विचार करते है, पर श्रावक एवं साधु दोनों के लिये अभक्ष्य आदि का विचार समान ही है..... सरीखा ही है.... यदि तुम श्रावक के योग्य आहार बनाओ तो साधु कभी भी तुम्हारे घर से खाली हाथ नहीं जायेंगे .....

आईये ! आज हम विचार करते है.... जागते है.... साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के लिये जैन शास्त्रो में बताये गये आहार के बारे में भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार....

परमात्मा के शासन को पाये हुए साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका को नीचे बतायी हुई वस्तुये कभी भी लेना कल्पे नहीं -

चार महाविगई - मांस, मदिरा, मक्खन एवं मध (शहद)

बावीस अभक्ष्य -

१) मांस २) मदिरा ३) मक्खन, ४) मध ५) उंबर के फल ६) वट वृक्ष के फल ७) गूलर ८) पीपल की पीपडी ९) पीपल के फल १०) बरफ ११) अफीम वगैरह जहर १२) ओले १३) कच्ची मिट्टी १४) रात्रिभोजन १५) बहुबीज बैंगन, खसखस इत्यादि १६) बोळ अचार - धूप में बराबर सुखाये बिना के अचार वो बोळ अचार (कच्ची अचार डाली हुई मिर्चियाँ वगैरह तीन ही दिन चलती है फिर अभक्ष्य १७) द्विदल - कच्चे (बिना गरम किये हुए) दूध, दही या छाछ के साथ कठोर धान्य खाने से द्विदल होता है १८) अंजाने फल १९) बैंगन २०) तुच्छ फल जिसमें खाने का कम हो और फेंकने का ज्यादा हो सीताफल, बोर वगैरह २१) चलित रस - जिसका स्वाद बदल गया हो या बास आना शुरु हो जाय ऐसे खाद्य पदार्थ २२) अनंतकाय जिसके सुई के अग्रभाग जितने भाग में अनंत जीव होते है ।

ऐसे अनंतकाय बत्तीस है वो निम्न अनुसार है -

१. सुरण २. लहसुन ३. गीली हल्दी ४. आलू ५. गीला कचूरा ६. शतावरी ७. विराली कंद ८. कुंवारपाठा ९. थोर १०. गुडवेल ११. शकरकंद १२. वंसकरेला १३. गाजर १४. लूणी १५. अदरक १६. कचालू १७. कोमल पत्ते १८. खरसुकंद १९. थेक की भाजी २०. गीली मोथ २१. लूणवृक्ष की छाल २२. खिलेठाकंद २३. अमृतवेल २४. मूला २५. भूमिफोडा २६. अंकुरितधान २. बथुआ की भाजी २८. प्याज २९. पालक की भाजी ३०. कोमल इमली ३१. रतालु ३२. पिंडालू

उपरोक्त बत्तीस अनंतकाय में से कितनी ही वस्तुये हमारे उपयोग में कभी भी आती नहीं है, फिर भी हम अज्ञानतावश उसका त्याग भी नहीं कर पाते है ।

अब कितनी सारी वस्तुये ऐसी है जो ठंडी के मौसम में कल्पती है, पर गर्मी और वर्षाऋतु में नहीं कल्पती ।

वस्तु का नाम	ठंडी	गरमी	वर्षाऋतु
	कार्तिक वद १ से फागुन सुदी पुनम	फागुन वद १ से आषाढ सुदी पुनम	आषाढ वद १ से कार्तिक सुदी पूनम
उबला हुआ पानी	१२ घंटे	१५ घंटे	९ घंटे
पालाभाजी, मैथी धनिया वगैरह	उपयोग कर सकते है	नहीं उपयोग कर सकते	नहीं उपयोग कर सकते
मिष्टान, फरसाण	३० दिन तक चलते है	२० दिन तक चलते है	१५ दिन तक चलते है
मेवे, काजू, बदाम आदि	उपयोग कर सकते है	नहीं कर सकते	नहीं कर सकते
खारेक, खजूर, खोपरा, तिल वगैरह	उपयोग कर सकते है	नहीं कर सकते ओसाये हुए तिल, खोपरे का पूरा गोला कल्पता है	नहीं कर सकते ओसाये हुए तिल, खोपरे कपूरा गोला कल्पता है

तिल खोपरा वगैरह ठंडी के बाद गर्मी में, बरसात में नहीं कल्पता पर यदि उबलते हुए पानी में ओसाकर (फागुन सुद पूनम से पहले) सूखा कर रखने में आये तो उसमें जीवोत्पति नहीं होने के कारण उपयोग करने में आपत्ति नहीं आती,उसी तरह बदाम आदि उसी दिन फोडकर निकालने में आये तो चल सकता है । उपयोग पूर्वक (जयणापूर्वक) वापरने में आये तो वो कल्पते है ।

ऐसे प्रकार की सूक्ष्म जानकारी हमें पाप से बचाती है, तथा पूज्य साधु-साध्वीजी भगवंतो का लाभ लेने में सहायक होती है ।

चलो ! इस जानकारी द्वारा हमारे जीवन में आहार शुद्धि लाकर ज्यादा पवित्रता बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील बनते है.....

साधु को आहार आदि वोहराने से लाभ होता है.... पुण्यानुबंधी पुण्य बंधता है, चलिये श्रावक को हमेशा सुपात्रदान की भावना रखनी चाहिये, अवसर मिलने पर अवश्य उत्कृष्ट भाव से लाभ लेना चाहिये पर लाभ लेने की इच्छा से कहीं दोषो का सेवन नहीं हो जाय उसकी भी चिंता करनी चाहिये । गोचरी की शुद्धि में लगते विविध दोषो में श्रावक के निमित्त से साधु को लगते सोलह दोषो का वर्णन शास्त्रो में आता है, ये सोलह दोष समझकर यथासंभव टालने के लिये सच्चे श्रावक-श्राविकाओं को प्रयत्नशील बनना चाहिये ये सोलह दोष निम्न अनुसार है -

१) आधाकर्मी दोष - साधु के निमित्त से छः काय के (यानि पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाया) जीवो का आरंभ (हिंसा) कर इन जीवो का घात करके, जीवो को किलामणा (तकलीफ) करके जो आहार आदि बनाने मे आये तो वो **'' आधाकर्मी दोष''** कहलाता है ।

२) औद्देशिक दोष - पविार के लिये बन रही रसोई में साधु के लिये ज्यादा की रसोई बनाने को लगाये की साधु-साध्वीजी भगवंत आयेंगे तो वोहरायेंगे, ऐसा सोच कर बनाने लगाये तो वो **''औद्देशिक दोष''** कहलाता है ।

३) पूर्तिकर्म दोष - शुद्ध आहार में (स्वयं के लिये बनाये हुए) एकाध भी कण या अल्प मात्रा में आधाकर्मी आहार मिलाये तो आहार अशुद्ध बनता है, उसे **''पूर्तिकर्म दोष''** कहा जाता है ।

४) मिश्रजातिदोष - साधु के लिये वैसे ही स्वयं के लिये ऐसे दोनो के लिये आहार बनाये वो **''मिश्रजातिदोष''** कहा जाता है ।

५) स्थापना दोष - घर में बनायी हुई रसोई में से साधु को बोहराने के निमित्त से रसोई अलग निकालकर रखे वो **''स्थापना दोष''** कहलाता है ।

६) प्राभृतिक दोष - साधु का लाभ लेने की भावना से या उन्हें अच्छी मिष्टान आदि वस्तुये बोहराने की भावना से परिवार में नियोजित शुभ प्रसंग-विवाह आदि की तिथि तारीख आगे पीछे करना वो **''प्राभृत्तिक दोष''** कहलाता है ।

७) प्रादुष्कृत दोष - साधु के निमित्त से अंधकार में रही हुई चीज वस्तुये आहार आदि प्रकाश में लाकर रखे वो **''प्रादुष्कृत दोष''** कहलाता है ।

८) क्रीत या क्रीडीत दोष - साधु के निमित्त से बाजार में से कोई भी वस्तु खरीदकर लाये और साधु को बोहराये वो **''क्रीत दोष''** कहलाता है ।

९) प्रामित्य दोष - साधु को चाहिये ऐसी वस्तु खुद के पास न हो तो किसी के पास से उधार लाकर दे तो **''प्रामित्य दोष''** कहलाता है ।

१०) पारिवर्तिक दोष - बनायी हुई रसोई में थोडा बहुत बदल करके व्यवस्थित करके ज्यादा अच्छी बनाकर (घी वगैरह ज्यादा लगाकर) साधु को वोहराना वो **''पारिवर्तिक दोष''** कहलाता है ।

११) अभ्यागत दोष - अपने किसी स्नेह-स्वजन द्वारा दिया गया आहार साधु को देना, स्वजन के लिये बनाया आहार, स्वजन के नहीं लेने से साधु को देना अथवा साधु के उपाश्रय मे जाकर साधु को आहार देना **''अभ्यागत दोष''** कहलाता है ।

१२) उभ्यिन्न दोष - घर को ताला लगाया हुआ हो, कपाट आदि को ताला लगाया हुआ हो, या बर्तन का मुँह बंद किया हुआ हो, ये खोलकर आहार आदि साधु को वोहराये वो **''उभ्यिन्न दोष''** कहलाता है ।

१३) भूमिमालापहृत दोष - तलघर में या माले (टांढ) पर रखा आहार सीडी वगैरह से चढ-उतरकर लाकर वोहरावे वो **''भूमिमालापहृत दोष''** कहलाता है ।

१४) आच्छेद्य दोष - किसी के पास से छिनकर लायी हुई वस्तु-आहार आदि साधु को वोहरावे वो **''आच्छेद्य दोष''** कहलाता है ।

१५) अनिसृष्ट दोष - अनेक व्यक्तियो के लिये बनाया गया आहार आदि स्वामी की अनुमति से या अनुमाते के बिना साधु को वोहराने में आये तो वो **''अनिसृष्ट दोष''** कहलाता है ।

१६) अध्यवपूरक दोष - आज गाँव में साधु-साध्वीजी पधारे ह, कदाचित वोहरने पधारेंगे ऐसा सोच रसोई चढायी हुई हो उसके उबलती पानी में दूसरा कच्चा पानी मिलाने में आये तो **''अध्यवपूरक दोष''** कहलाता है ।

शास्त्रो में बताये इन दोषो में हम कहीं न कहीं जानते हुए या अन्जाने में फंस जाते हो तो आत्मनिरीक्षण कर दोषो को जीवन में से दूर कर अपने जीवन को निर्मल बना साधु-साध्वीजी भगवंतो के जीवन की पवित्रता को टिकाये रखे यही अभिलाषा ।

गोचरी वोहराने में जैसे श्रावक की अज्ञानता से कितने ही दोष लगते है, उसी तरह साधु सावधान न हो तो भी साधु को कितने ही दोष लगते है, निशिथ सूत्र में श्रावक के द्वारा लगते सोलह दोषो के बाद साधु से लगते सोलह दोषो का वर्णन आता है, जो निम्न अनुसार है -

१) धात्रिक दोष - आहार प्राप्त करने हेतु गृहस्थ के बच्चो के साथ खेले वो **''धात्रिक दोष''** कहलाता है ।

२) दूतिक दोष - दूत की तरह गांव, परगांव में संदेशा देकर आहार ले वो **''दूतिक दोष''** कहलाता है ।

३) निमित्त दोष - ज्योतिष निमित्त आदि कहकर आहार ले वो **निमित्त दोष** कहलाता है ।

४) आजीविका दोष - आहार प्राप्त करने अपनी जाति को प्रकाशे (बताये) वो **''आजीविका दोष''** कहलाता है ।

५) वनीपक दोष - आहार प्राप्त करने श्रावक के आगे दीनता प्रकट करे वो **''वनीपकदोष''** कहलाता है ।

६) चिकित्सा दोष - आहार प्राप्त करने नाडी देखकर औषधि आदि करे वो **''चिकित्सादोष''** कहलाता है ।

७) क्रोधपिंड दोष - आहार प्राप्त करने हेतु क्रोध करके आहार ले वो **''क्रोधपिंड दोष''** कहलाता है ।

८) मानपिंड दोष - आहार प्राप्त करने गृहस्थ का मान रखे वो **''मानपिंड दोष''** कहलाता है ।

९) मायापिंड दोष - आहार प्राप्त करने हेतु रुप परिवर्तन आदि करे वो **''मायापिंड दोष''** कहलाता है ।

१०) लोभपिंड दोष - लोभवश जरुरत से ज्यादा आहार आदि ले तो वो **''लोभपिंड दोष''** कहलाता है ।

११) पूर्वपश्चात संस्तव दोष - आहार की या आहर वोहराने वाले दाता की आहार लेने से पहले या बाद में प्रशंसा करे वो **''पूर्वपश्चात संस्तव दोष''** कहलाता है ।

१२) विद्यापिंड दोष - आहार प्राप्त करने मंत्र,तंत्र आदि से देव-देवी की आराधना करे वो **''विद्यापिंड दोष''** कहलाता है ।

१३) मंत्रपिंड दोष - आहार प्राप्त करने काम वशीकरण आदि मंत्रोपयोग कहे या करे वो **''मंत्रपिंड दोष''** कहलाता है ।

१४) चूर्णपिंड दोष - आहार प्राप्त करने औषधि आदि मिलाकर चूर्ण वगैरह करके दे वो **''चूर्णपिंड दोष''** कहलाता है ।

१५) योगपिंड दोष - पादप्रलेप आदि चमत्कार दिखाकर लोगों का मनोरंजन कर आहार प्राप्त करे वो **''योगपिंड दोष''** कहलाता है ।

१६) मूलकर्म दोष - आहार प्राप्त करने गर्भ उपजाने के, गर्भपात के, शांतिकर्म वगैरह के उपाय बताये वो **''मूलकर्म दोष''** कहलाता है ।

संयम की आराधना सुखरुप चले.... आत्मा की समाधि टिकी रहे, इसके लिये शास्त्रो ने साधु को विधिपूर्वक आहार ग्रहण करने की बात कही है, यही विधि गोचरी के नाम से प्रसिद्ध है । हमने पहले श्रावक और साधु जागृत न हो तो लगने वाले गोचरी के १६ व १६ (कुल ३२) दोषो की बात समझने का प्रयत्न किया अब यहां पर दोनों से साथ में लगते दस दोषो का वर्णन करने में आ रहा है ।

१) शंकित दोष - आहार वोहराते वक्त दोष की शंका होने के बावजूद ध्यान दिये बिना आहार ग्रहण करे तो वो **''शंकित दोष''** कहलाता है ।

२) मृक्षित दोष - अभक्ष्य, अकल्प्य, अयोग्य वस्तु जो लेना साधु को कल्पे नहीं वो ग्रहण करे तो **''मृक्षित दोष''** कहलाता है ।

३) निक्षिप्त दोष - माटी, पानी, सचित्त धान्य आदि का संघट्ट (स्पर्श करके) रही हुई अचित वस्तु स्वीकारे तो **''निक्षिप्त दोष''** कहलाता है ।

४) पिहित दोष - अचित एवं सचित्त के आधार पर शास्त्र में चतुर्भंगी कही हुई है । (चार भांगे / संभावनाये) १. सचित्त वस्तु सचित्त से ढंकी हुई हो २. अचित्त वस्तु सचित्त से ढंकी हुई हो ३. सचित्त वस्तु अचित्त से ढंकी हुई हो और ४. अचित्त वस्तु अचित्त से ढंकी हुई हो ।

उपरोक्त चार भांगे में प्रथम तीन भांगे अशुद्ध है, ऐसी वस्तु लेना साधु को नहीं कल्पता । यदि साधु उपरोक्त तीन भांगे में से कोई वस्तु ग्रहण करे तो **''पिहित दोष''** लगता है ।

५) संहृत दोष - आहार देने के पात्र में अभक्ष्य या अयोग्य वस्तु हो उसे दूसरे पात्र में निकलाकर उसी पात्र से (अभक्ष्य से लिपटे हुए) कल्प्य आहार आदि दे और साधु ग्रहण करे तो **''सहृत दोष''** लगता है ।

६) दायक दोष - आहार वोहराने के लिये अयोग्य हो ऐसे व्यक्ति के हाथ से आहार ग्रहण करे तो **''दायक दोष''** लगता है । आहार देने में अयोग्य व्यक्तियो में निम्न व्यक्तियो का समावेश हो सकता है, नपुंसक, वृद्ध, अंधा, बालक, बंदीवान, पीसता, खांडता, कूटता, पिंजता, खाना खाता हुआ, मथता हुआ, बालक को दूध पिला रही स्त्री, आठ मास की गर्भवती स्त्री (सिर्फ बैठकर वोहरा सकती है) या छः काय के आरंभ - समारंभ में लीन वगैरह ।

७) उन्मिश्र दोष - साधु को वोहरने योग्य आहार में वोहरने में अयोग्य आहार मिलाकर दे और साधु ले तो वो **''उन्मिश्र दोष''** कहलाता है ।

८) अपरणित दोष - जिस आहार के वर्ण गंध, रस, स्पर्श के परिणाम न हुए हो (आहार बराबर पका न हो) कच्चा हो या घर में व्यक्ति के वोहरनो के भाव हो और दूसरे के न हो, ऐसा आहार लेने पर **''अपरणित दोष''** लगता है ।

९) लेपकृत दोष - आहार वोहराने से पहले या बाद में हाथ या वोहराने का पात्र धोकर साफ करे एवं साधु आहार ग्रहण करे तो **''लेपकृत दोष''** लगता है ।

१०) छर्दित दोष - साधु को आहार वोहराते वक्त दूध,दही, घी, तेल वगैरह की बूंदे नीचे जमीन पर गिराते हुए वोहरावे या अन्य वस्तु नीचे गिर रही हो और वोहरावे और साधु ले तो **''छर्दित दोष''** कहलाता है ।

पूर्व में बताये बत्तीस एवं उपरोक्त दस ऐसे सब मिलाकर गोचरी के बयांलीस दोष टालने श्रावक व साधु को सावधानी रखना चाहिये । ऐसी दोषरहित गोचरी साधु की आराधना में वृद्धि करने वाली बनती है । अनेक जीवों को अभयदान देने वाली बनकर शासन का जय जयकार कराती है ।